विकसित भारत की संकल्पना में प्राचीन व्यापार का वैशिष्ट्य

डॉ0 सपना जायसवाल

एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, राजकीय महिला महाविद्यालय, अलीगंज, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence Author: डॉ0 सपना जायसवाल

Received 1 Apr 2026; Accepted 12 May 2026; Published 29 May 2026

DOI: https://doi.org/10.64171/JSRD.5.S3.1-3

सारांश

किसी भी सभ्यता की बुनियाद उसकी आर्थिक संरचना होती है। समाज का निरन्तर विकास एक सुदृढ़ अर्थव्यवस्था पर निर्भर करता है इसीलिए प्राचीन भारत में प्रचलित पुरुषार्थ सिद्धान्त में 'अर्थ' को महत्व दिया गया था। प्राचीन काल में 'अर्थ' को अर्जित के प्रमुख साधनों में व्यापार भी शामिल था। आधुनिक युग में भी समाज को विकसित करने में व्यापार की भूमिका अत्यंत आवश्यक होती है। भारत को 2047 तक विकसित करने में व्यापार सर्वाधिक महत्वपूर्ण आयाम सिद्ध होगा। व्यापार से देश का आर्थिक तंत्र मजबूत होता है। प्राचीन भारत के व्यापारिक अनुभवों को आत्मसात करके नवीन व्यापारिक तंत्र की मूर्त संकल्पना कर सकते हैं। भारत के आयात–निर्यात एवं व्यापार संतुलन को निर्धारित करके देश के व्यापार को समृद्ध किया जा सकता है। प्राचीन भारत के व्यापार में कई समयांतरालों भारत का व्यापार संतुलन सकारात्मक रहा है और प्राचीन भारत में विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन एवं निर्यात कर बहुत सा धन अर्जित किया जाता था। रोम से होने वाले व्यापार में भारत को वहाँ से हर वर्ष 55 करोड़ सेस्टर्स की प्राप्ति होती थी। मसाले, हीरे, इस्पात, वस्त्र आदि निर्यात प्रमुख वस्तुएँ थीं। रोम प्रतिवर्ष भारत की विलासिता सामग्री मँगाने पर 10 करोड़ सेस्टर्स व्यय करता था तथा अपने स्वर्ण से भुगतान करता था। 'प्लिनी' भारत की ओर इस स्वर्ण प्रवाह देखकर दुःख प्रकट करता है। इस प्रकार के व्यापार में प्राचीन भारत में व्यापार को अत्यंत लाभदायक बनाया था। अतः आधुनिक समय में भी अन्य देशों की आवश्यकतानुसार वस्तुओं का उत्पादन कर व्यापार में अच्छा लाभ अर्जित किया जा सकता था।

मूलशब्द: व्यापार संतुलन, आयात, निर्यात, रोम, मसालें, वस्त्र

परिचय

प्राचीन भारत में व्यापार की प्रक्रिया का अभ्युदय संभवतः सभ्यता एवं मानव के विकास के साथ ही आरम्भ हो गया था। पाषाण युग का मानव चूँकि पूर्णतः प्रकृति निर्भर था, अतः व्यापारिक प्रक्रिया पूर्ण विकास नहीं हो सका, किन्तु पाषाण काल के अंतिम चरण में व्यापार के साक्ष्य प्राप्त होने लगे थे। सिंधु घाटी सभ्यता में व्यापारिक प्रक्रिया का उत्कर्ष परिलक्षित होता है। सिंध घाटी सभ्यता के निवासी मेसोपोटामिया, मिस्र जैसे क्षेत्रों के साथ व्यापार करते थे। सैंधव क्षेत्र में निर्मित वस्तुएँ उत्खनन के उपरान्त अलग–अलग क्षेत्रों से प्राप्त हुई है जो उन्नत व्यापार की स्थिति को इंगित करती है। हड़प्पा सभ्यता से सम्बन्धित विभिन्न वस्तुएँ यथा–हाँथी दाँत का पासा, दो प्रकार के धातु से निर्मित वस्तुएं, मृणमूर्तियाँ, छिद्रयुक्त मर्तबान, मनके, चाँदी की मुहरे, मृण्मय बैल, खिलौना, गाड़ी के पहिए आदि मध्य एशिया के तुर्क में निस्तान में कस्पियन सागर के निकट आल्टिन टेपे, नगाजगा टेपे, ताहिर बाई टेपे जैसे स्थलों से प्राप्त हुई है। इसी प्रकार सैंधव क्षेत्र में भी व्यापारिक सहयोगी देशों की बनी वस्तुएँ के भी साक्ष्य प्रकाश में आये हैं। अलंकृत क्लोराइट और हरिताश्म के बने बर्तन फारस की खाड़ी और पश्चिम एशिया के व्यापार में उच्च माँग वाली वस्तु थे, जिनके कुछ अवशेष मोहनजोदड़ो से प्राप्त हुए हैं। अतः हड़प्पा सभ्यता में व्यापार उन्नत अवस्था में था किन्तु सभ्यता के पतन के साथ इस व्यापार चक्र में भी ह्रास हुआ।

हड़प्पा सभ्यता के पतन के उपरान्त भारत में ग्रामीण संस्कृतियों का अविर्भाव होता है, किन्तु यहाँ व्यापार का क्षेत्र अत्यन्त सीमित एवं अल्पकालिक था। ऋगवैदिक काल में अर्थव्यवस्था का प्रमुख आयाम पशुपालन ही बना एवं अल्प स्तर पर ही व्यापार की झलक मिलती है। ऋगवैदिक साहित्यों में व्यापार करने वाले व्यक्तियों को पणि, वणिज, विणक, आदि कहा गया है। 'पाणि' समूह एक समृद्ध व्यापारियों का वर्ग था, जो अपने सामान को दूर–दूर तक ले जाकर बेंचते थे। व्यापार के लिए वस्तु विनिमय का माध्यम प्रयुक्त होता था। एक मंत्र से स्पष्ट होता है कि दस गायों को देकर इन्द्र की प्रतिमा ली गई थी।

प्राचीन भारत में व्यापार की प्रक्रिया को गति महाजनपदों के विस्तार एवं उनकी समृद्ध से आरम्भ होती है। भारत के समाज में लोहे के प्रयोग से कृषि भूमि क्षेत्र में तेजी से विस्तार हुआ, जिसके फलस्वरूप विभिन्न व्यापारिक वस्तुओं का निर्माण आरम्भ हुआ। छठवीं शताब्दी ईसा पूर्व में गंगा–घाटी परिक्षेत्र बहुत से नगरों का उद्भव हुआ। बौद्ध धर्म के उद्भव ने भी व्यापार के विकास में भूमिका निभाई। बौद्धकाल में व्यापारियों को उनके सम्बन्धित स्थानों से सम्बोधित किया जाता था यथा– मद्र देश का व्यापारी–'मद्रवाणिज', कश्मीर का व्यापारी काश्मीर वाणिज्य आदि।

बुद्धकाल में व्यापारी अपने तैयार सामान को दुकानों पर बेचते थे, उन दुकानों को 'आपण'[1] कहा जाता था बाजार या दुकान के माध्यम से विक्रय की गई वस्तुओं को 'पण्य' या 'पणितत्य'[2] कहा जाता था। जातकों से ज्ञात होता है कि व्यवसाय के आधार पर वस्तुओं की 'वीथियाँ' बनी थी।[3] बाजारों में कपड़े रथ, तेल, अन्न, शाक, रत्न, सोना, चाँदी आदि का क्रय–विक्रय किया जाता था।[4] इस युग में दुकानों स्थायी तथा अस्थायी दोनों होती थी। अस्थायी दुकान से तात्पर्य है कि जब व्यापारी अपने सामान को लादकर घूम–घूम कर उनको बेचे जबकि स्थायी दुकान में, वस्तुओं को सजाकर ग्राहकों के लिए रखा गया तथा खरीददार वस्तुओं को देखकर उन्हें खरीदे। बहुमूल्य वस्तुएँ हाथी, घोड़े, रत्न आदि को खरीदने के लिए ऐसे व्यक्ति राजाओं के यहाँ भी हुआ करते थे, जो वस्तु के मूल्य निर्धारण का कार्य करते थे। बुद्ध काल में व्यापारिक संगठनों का भी अविर्भाव हुआ, जो श्रेणी संगठन कहे जाते थे। इनका प्रमुख जेट्ठक कहलाता था, यह जेट्ठक या सेट्टि व्यापारियों की समस्या का समाधान करता था एवं उनके हितों की रक्षा करता था। बौद्ध काल में उन व्यापारियों का उल्लेख प्राप्त होता है जो अधिक से अधिक लाभ की अभिलाषा से 400 प्रतिशत तक लाभ कमाना चाहते थे।[5] जातकों में कुछ

धनिकों यथा अनाथपिण्डक, यश आदि का विवरण प्राप्त होता है। इस युग में समृद्ध व्यापारी, 32 से 80 करोड़ तक के स्वामी होते थे। मौर्यकाल में व्यापार में व्यापक वृद्धि हुई है। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' से मौर्यकालीन व्यापार का विवरण प्राप्त होता है। चाणक्य के अनुसार व्यापार के निमित्त बाजार में बेची जाने वाली वस्तु 'पण्य' कही जाती थी तथा इसकी निगरानी के लिए 'पण्याध्यक्ष' नामक अधिकारी की नियुक्ति की जाती थी। कौटिल्य का कथन है कि पण्याध्यक्ष स्थल पर जल में उत्पन्न एवं स्थल–पथ और जलपथ से आने वाली सभी वस्तुओं के मूल्य में तारतम्य रखता था, साथ ही उन वस्तुओं की लोकप्रियता और अप्रियता के आधार पर न्यूनाधिक परिमाण में उनका संग्रह करवाता था।[6] राज्य स्वाभाविक रूप से नित्य प्राप्त होने वाली वस्तुओं की बिक्री पर वह अंकुश लगाता था और उन वस्तुओं के अधिक एकत्र हो जाने का कोई कारण नहीं उत्पन्न होने देता था।[7] शीघ्र खराब होने वाली वस्तुओं को शीघ्र, अतिशीघ्र विक्रय करने का प्रयत्न किया जाता था। मौर्यकाल में व्यापार आरम्भ करने के लिए राजाज्ञा की आवश्यकता होती थी, इसकी प्राप्ति के उपरान्त ही व्यापारी–नया व्यापार प्रारम्भ कर सकता था। उत्पादित वस्तुओं का मूल्य प्रायः राज्य द्वारा निर्धारित किया जाता था एवं इसी मूल्य को निश्चित माना जाता था।[8] प्रायः समस्त वस्तुएं उत्पादन स्थल पर ही बेची जाती थी, उसके बाहर नहीं।[9] बाजार में लाई वस्तुओं की गुणवत्ता का परीक्षण भी किया जाता था। मेगास्थनीज का कथन है कि बाजार विक्रय के लिए आई सभी वस्तुओं का परीक्षण किया जाता था एवं वस्तुओं को मुहर बन्द कर बाजार में बिक्री के लिए भेज दिया जाता था।[10] संस्थाध्यक्ष नामक अधिकारी वस्तुओं को गोदान में रखने और उनके विक्रय की व्यवस्था करता था।

मौर्यकाल में खाद्य पदार्थों में मिलावट करने पर भी प्रतिबंध था तथा स्वच्छता को विशेष महत्व दिया जाता था। व्यापारियों द्वारा तेल, घी, नमक, सुगंधित वस्तुओं, औषधीय द्रव्यों आदि में मिलावट करने पर 12 पण का अर्थदण्ड लगाया जाता था।[11] आधुनिक समयातंराल में खाद्य पदार्थों में मिलावट करने की वृत्ति में तेजी से वृद्धि हुई। इसका कारण व्यापारियों द्वारा बहुत कम समय में अधिक लाभ अर्जित करना है। आज भारत में खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता को जाँच करने के लिए भारतीय खाद्य सुरक्षा एवं मानक प्राधिकरण (FSSA)[12] जैसी संस्थाएँ विद्यमान हैं परन्तु इस समस्या का सटीक समाधान नहीं मिल पा रहा है। मौर्य काल में अर्थदण्ड एवं सजा के माध्यम से इस पर नियंत्रण रखने का प्रयास किया गया था। आधुनिक समय में सम्भवतः नियमों को सुगम एवं प्रभावी ढंग से लागू करके इस पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है।

प्राचीन के महाकाव्यों यथा रामायण एवं महाभारत से भी व्यापार–वाणिज्य की सूचना प्राप्त होती है। रामायण के अनुसार वणिक व्यापार हेतु दूर–दूर तक जाया करते थे।[13] महाकाव्यों के अनुसार कम्बोज, बाहलीक विन्ध्य क्षेत्र व्यापार में प्रसिद्ध थे। विन्ध्य क्षेत्र के हाथियों की माँग एवं प्रसिद्धि बहुत अधिक थी।[14] महाभारत विवरण के अनुसार पाण्डवों को मिलने वाले उपहारों में पूर्वी देशों के हाथी, कम्बोज, गंधार, बाहलीक और प्राग्ज्योतिषपुर के अश्व पश्चिमी क्षेत्रों के ऊँट, कम्बोज के ऊनी वस्त्र, बाहलीक एवं चीन के रेशमी वस्त्र, अपरान्त और पूर्वी क्षेत्रों के सूती वस्त्र, प्राप्ज्योतिषपुर अपरान्त तथा पूर्वी क्षेत्रों के आयुत्र, पाण्डय और यवन देशों के मोती तथा सिन्धु देश के 'शालि' सम्मिलत थे।[15]

मौर्येत्तर काल में व्यापार का विकास निरंतर जारी रहा। पतंजलि ने भी व्यापारिक वस्तुओं के लिए 'पण्य' शब्द का प्रयोग किया है। पण्य सामानों में सभी प्रकार के खाद्यान्न, शाक, पेय, वस्त्र, सुगंध, अलंकार, मूर्तियाँ, संगीत सामग्री, राग (रंग), चम्र, पात्र, पशु, औजार, धातु निर्मित वस्तुएँ आदि शामिल थी।[16] कुषाण शासकों के शासन काल में व्यापार में अत्यन्त वृद्धि हुई। भारत के क्षेत्र पर अधिक के उपरान्त राजा कनिष्क–। साम्राज्य के क्षेत्रफल में व्यापक वृद्धि हुई एवं प्रमुख रेशम मार्ग पर भी कुषाण शासकों का नियंत्रण स्थापित हो गयां अब भारत के व्यापारी पश्चिमी देशों के साथ होने वाले व्यापार में बिचौलियों की भूमिका निभाने लगे, जिससे उन्हें बहुत बहुत लाभ प्राप्त होता था। कुषाण काल में शिल्प के क्षेत्र में गुणवत्ता एवं विशेषीकरण की प्रवृत्ति का भी प्रादुर्भाव होता है जिसके परिणामस्वरूप भारत में निर्मित वस्तुओं की माँग पश्चिमी देशों में बहुत अधिक थी तथा इन वस्तुओं के लिए वे उच्च मूल्य भी चुकाते थे। कुषाण युग में वस्त्र, मसाले, बर्तन, आभूषण, मोती आदि का निर्यात बड़े पैमाने पर होता था। 'पेरिप्लस आफ द एरिथ्रियन सी' में भी इस युग की व्यापारिक वस्तुओं की सूचना प्राप्त होती थी। कुषाण काल की अवधि में भारत का 'व्यापार संतुलन' सकारात्मक था जो भारत की उन्नत आर्थिक स्थिति का सूचक था।

गुप्तकाल में भी व्यापार की प्रक्रिया निरंतर जारी रही, किन्तु इसकी गति में कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ। इस काल में आन्तरिक व्यापार श्रेष्ठि, सार्थवाह एवं कुलिकों के माध्यम से संचालित किया गया था। ऐसे व्यापारी जो अपनी वस्तुओं को घोड़ों, बैलों या अन्य वशुओं या रथों पर लादकर समूह में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पैदल जाते–आते थे तथा क्रय–विक्रय करते थे, 'सार्थ' के नाम से सम्बोधित किया जाता था।[17] गुप्त युग में बाजार को 'विपणि' शब्द से परिलक्षित करते थे, जहाँ क्रय–विक्रय के लिए विभिन्न प्रकार की वसतुएँ इकट्ठी होती थी।[18] विवेच्य युग में स्थल एवं जल मार्ग के माध्यम से व्यसापार किया जाता था। कालिदास के वर्णन से ज्ञात होता है कि राज्य स्थल मार्गों एवं जलमार्गों पर व्यापारियों की सुरक्षा का पूर्ण प्रबन्ध करता था।[19] इसका कारण व्यापारियों के साथ डाकुओं द्वारा की जाने वाली लूटपाट थी। कालिदास ने इस प्रकार होने वाली घटनाओं का वर्णन अपने काव्यों में किया है।[20] गुप्तकालीन विदेशी व्यापार कुछ ह्रास की स्थिति का परिलक्षित होता है, इसका कारण रोम के साथ होने वाला व्यापार था। रोम की सरकार ने इस काली में सोने के निर्यात पर प्रतिबंध लगा दिया, जिससे भारत के साथ क्रय–विक्रय प्रभावित हुआ। हालांकि अन्य देशों के साथ भारत के व्यापारिक सम्बन्ध बने रहे, परन्तु मौर्योत्तर काल की तुलना यह व्यापार कुछ कमजोर प्रतीत होता है। यह स्थिति आज के भारत के अन्य देशों के साथ सम्बन्ध से साम्यता रखती है, जहाँ भारत विभिन्न देशों यथा अमेरिका, रूस, चीन, यूरोपीय के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित कर भारत के लिए व्यापारिक लाभ अर्जित करता है। गुप्तकाल के समान वर्तमान में भी ये सम्बन्ध लगातार गतिशील बने है। गुप्त काल में आंतरिक व्यापार समृद्ध स्थिति में था। विभिन्न वस्तुओं यथा दूध, दही, घी, शहद, लाख गरम मसाले, शराब, माँस, पकाया चावल, कचड़े, रेशम, चमड़ा दास–दासियाँ, हथियार आदि का क्रय–विक्रय आन्तरिक व्यापार में किया जाता था। गुप्तोत्तर काल में भी व्यापार में निरंतर गतिशीलता बनी रही। इस काल के साहित्यिक स्त्रोतों[21] से स्पष्ट होता है कि भारतीय व्यापारी देश के प्रत्येक भाग से माल खरीद कर उन स्थानों पर पहुँचाते थे जहाँ उनकी मांग होती थी। सातवीं सदी में भी व्यापार में ह्रास के कुछ अंश दृष्टिगत होते हैं। भारत के समाज में सामंतवाद के उदय ने केन्द्रीय शक्तियों को कमजोर एवं स्थानीय सामंतों को मजबूत कर दिया, जिससे भारत के भीतर क्षेत्रीय विभाजन की प्रवृत्ति का अभ्युदय हुआ जिसने व्यापार प्रक्रिया को कुछ दुर्लभ बना दिया। हालांकि विभिन्न अभिलेखीय साक्ष्यों से कुछ आंतरिक व्यापार की पुष्टि होती है कि कर्णाट, मध्य प्रदेश, लाट टक्क (चिनाब और रावी के बीच का क्षेत्र) के व्यापारी अपने माल पर उपकर चुकाने के लिए इकट्ठे होते थे।[22] आठवीं से दशवीं शताब्दी के मध्य स्थानीय व्यापार में वृद्धि होती है, जबकि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में लगातार गिरावट के तत्व दृष्टिगोचर होते हैं। यह प्रक्रिया एक बंद अर्थव्यवस्था की स्थिति को प्रदर्शित करती है।

अतः प्राचीन भारत के अन्तर्गत संचालित व्यापारिक प्रक्रियाओं को समझ कर विकसित भारत के लिए खाका तैयार किया जा सकता है। व्यापार एवं वाणिज्य को बढ़ाकर ही भारत वैश्विक पटल पर एक विकसित देश के रूप में स्थापित हो सकेगा। अतः केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार, सिविल सोसायटी, पंचायतों आदि सभी को साथ मिलकर इस लक्ष्य के लिए प्रयत्न करना होगा, तभी यह पूर्ण हो सकेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वही,
2. जातक 1, 320
3. थेरीगाथा 42
4. जातक, 1.109; 4.2
5. मिश्र, जयशंकर, प्राचीनकाल का सामाजिक इतिहास,
6. अर्थशास्त्र , 2.16
7. वही,
8. वही,
9. मेगास्थनीज–34
10. अर्थशास्त्र , 4.2
11. रामायण–अयोध्या काण्डा, 67.22
12. रामा, बालकाण्ड, अध्याय–6
13. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय–199, 221
14. मिश्र, जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास,
15. वही, पृ0 551
16. रघुवंश, 16.41; मालविकाग्निमित्र, पृ0 33, 801
17. वही, पृ0 17, 64
18. रघुवंश, 16.41; मालविकाग्निमित्र, पृ0 1112
19. कथासरित सागर, पृ0 85, कुवलयमाला कथा, पृ0 91।